Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

भारतीय ज्ञान परंपरा के उत्स : वेदांग

मनोज कुमार झा
विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग, धुबरी गर्ल्स कॉलेज, धुबरी (असम)

भारतीय ज्ञान परंपरा की सरणियाँ बहुविध पथों का अवलंबन करती हुई अनादिकाल से प्रवाहित होती आ रही हैं। वेद इस परंपरा के गोमुख हैं। वेदों में भारतीय ज्ञान संपुट रूप में विद्यमान है। यह ज्ञान हजारों वर्षों की कालावधि में संकलित और व्यवस्थित किया गया। श्रीअरविंद ने वेद रहस्य (द सीक्रेट्र ऑफ द वेदाज़) में वैदिक संहिता को भारतवर्ष के धर्म, सभ्यता और आध्यात्मज्ञान का सनातन स्रोत कहा है। वे वेदों को रहस्यमय साहित्य मानते हैं तथा कहते हैं कि वेद, उनकी भाषा, कथन शैली, विचारधारा आदि किसी अन्य युग की सृष्टि हैं, अन्य प्रकार के मनुष्यों की बुद्धि की उपज हैं। एक ओर तो वे अति सरल हैं, मानो निर्मल वेगवती नदी के प्रवाह हों, दूसरी ओर यह विचार-प्रणाली इतनी जटिल लगती है, इसका भाषिक अर्थ इतना गूढ़ है कि मूल विचार तथा पंक्ति के सामान्य अर्थ को समझने में प्राचीन काल से तर्क-वितर्क होता आ रहा है।[1]

कौटिल्य ने अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन विचारकों द्वारा मान्य विद्याओं पर विचार करने के बाद 'अर्थशास्त्र' में आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता तथा दंडनीति को विद्याओं के रूप में मान्यता दी है। उन्होंने साम, ऋक् तथा यजुः को समन्वित रूप से त्रयी कहा है। अर्थवेद तथा इतिहास भी उनके अनुसार वेद हैं। इसी क्रम में उन्होंने वेदांगों के रूप में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दोविचिति और ज्योतिष की गणना की है।[2] वेदों के सुग्रथित, विस्तृत तथा गुह्य वांगमय ने जहां एक ओर भारत के सामाजिकार्थिक-धार्मिक जीवन का नियमन किया वहीं दूसरी ओर इसकी विशिष्ट भाषा, रूपकीय शैली तथा छंदानुशासन ने इस वांगमय को दुर्बोध बनाया। इसकी ओर ऊपर के अनुच्छेद में संकेत किया गया है।

वेद धर्म के मूल तथा सभी सत् विद्याओं के आधार हैं। चारों वर्णों, तीनों लोकों, चारों आश्रमों, तीनों कालों का बोध हमें वेदों से प्राप्त होता है। अतः वेदों के अध्ययन तथा मनन को महनीय कार्य (तप) माना गया। व्याकरण महाभाष्यम् में ब्राह्मणों से अपेक्षा की गई है कि वे छहों अंगों के साथ वेदों का अध्ययन करें तथा उसका तात्पर्य ग्रहण करें। ऐसा उनसे बिना किसी प्रयोजन के किए जाने की अपेक्षा की गई है।[3] निरुक्त में वेदों को पढ़ने के बाद भी उसके अर्थ से अनभिज्ञ व्यक्ति को भार ढोने वाला मूढ़ कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि वेदार्थ समझे बिना किया गया वेद पाठ ईंधन के अभाव में आग प्राप्त करने के प्रयत्न की तरह निष्फल होता है।[4]

वेद शब्द 'विद ज्ञाने' धातु ने व्युत्पन्न है। इसका अर्थ है ज्ञान। सामान्य अर्थ में आयुर्वेद आयुष् का ज्ञान है और धनुर्वेद धनुष चलाने का ज्ञान। तथापि वेद का विशिष्ट अर्थ आपस्तंभ धर्मसूत्र में इस प्रकार बताया गया है- मंत्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् अर्थात् मंत्र तथा ब्राह्मण वेद हैं। डा. मंगलदेव शास्त्री मानते हैं कि प्रारंभ में

वेद शब्द में सामान्येन ज्ञान या विद्या के रूप में प्रयोग होता था। कालांतर में अनेक कारणों से यह प्राचीन परंपरा से प्राप्त मंत्र ब्राह्मणात्मक वैदिक साहित्य के लिए ही प्रयुक्त होने लगा।[5] भारत में ज्ञान को सबसे ऊँची उपलब्धि माना गया है। ऐसी मान्यता विश्व की अन्य संस्कृतियों में भी पाई जाती है। भारतीय परंपरा में वेदों को ज्ञान का आदि स्रोत माना गया है। इसे सभी धर्मों का मूल बताया गया है। सतत् तथा अव्याहत चिंतन - मनन- निदिध्यासन द्वारा इस ज्ञान का प्रत्यक्ष ऋषियों को हुआ। इसका प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिए ऋषियों ने त्याग, संयम तथा तप की विभूतियां प्राप्त कीं और जो ज्ञान उपलब्ध किया उसे मंत्रों के रूप में अभिव्यक्त किया।ज्ञान एक स्वयंप्रकाश प्रत्यय है। इसको छिपा कर रखना उचित नहीं माना गया। इसी के साथ यह भी सावधानी रखी गई कि यह ज्ञान सत्पात्र को ही प्राप्त हो। ज्ञान का विनिमय करना भी सही नहीं माना गया। सुपात्र को ज्ञान देना भारतीय ज्ञान परंपरा के विस्तार का आधार बना। श्रीमद्भगवद्गीता में अर्जुन से भगवान कहते है, उस ज्ञाना को विनय, आदर तथा प्रश्नोत्तर द्वारा, सेवाभाव से प्राप्त करो। तत्वदर्शी ज्ञानी तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश करेंगें (गीता 4/34)। समग्र उपनिषद् साहित्य में ज्ञान की महिमा बताई गई है तथा उस गह्वरेण्ठ ज्ञान को प्राप्त करने के लिए तप तथा उपासना के पथ का निर्देश किया गया है। इसके लिए भागवत शक्ति का आवाहन करते हुए ईशावास्योपनिषद् में कहा गया है:

“हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।

तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥”

आचार्य देवेंद्रनाथ शर्मा के अनुसार, 'चिरंतन सत्य को ऋषियों ने देखा और उसे अभिव्यक्त किया। सत्य की उसी अभिव्यक्ति को मंत्र कहते हैं। जिस मंत्र को जिन ऋषि ने वाणी दी, उसे उसका ऋषि कहा जाता है। हज़ारों की संख्या में बिखरे मंत्रों को इकट्ठा और श्रृंखलाबद्ध करने का काम महर्षि वेदव्यास ने किया; वेदव्यास अर्थात् वेदों का व्यास (विभाजन) करनेवाला। ऋग्वेद भारतीय चिंतन का आदि स्रोत है, इसी से ज्ञान, भक्ति, कर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति-साधना की धाराएं प्रवाहित होकर, भारतीय जीवन में सरसता का संचार करती रही हैंऔर विषम स्थितियों में उसे मुरझाने और सूखने से बचाती रही हैं।'[6] भारतीय वांगमय के शीर्ष पर वेदों की महत्ता भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान स्वीकार करते हैं। वेदों का साहित्य जितना विपुल है उसकी शाखाएं प्रशाखाएं भी उतनी ही विशाल। जैसा कि ऊपर कहा गया है, वेद सभी प्रकार के ज्ञान के स्रोत हैं। धार्मिक, सांसारिक, वैज्ञानिक तथा गुह्य विद्याओं के बीज वेदों में पाए जाते हैं। यही वजह है कि आगे चल कर जिन दर्शनों का विकास हुआ उन्हें आस्तिक तथा नास्तिक इन दो कोटियों में रखा गया। अस्तिक कोटियों में वे दर्शन आए जिन्हें वेदों का प्रामाण्य स्वीकार्य था अन्यथा दर्शन नास्तिक दर्शन कहलाए। वेदों में निहित ज्ञान की गरिमा को देखते हुए भारत में इन्हें अत्यंत श्रद्धास्पद माना गया और इनके वात्पर्य को समझाने के लिए ऋषियों ने टीकाएं लिखीं।

जैसा कि सभी ज्ञान प्रस्थानों के साथ होता है, वेद भी प्रतीकों के प्रयोगों से रचित आध्यात्मिक सूक्तों की संहिताएं हैं। इनका वाह्य रूप कर्मकांडपरक स्तुतियों का लगता है। परंतु उन स्तुतियों में आध्यात्मिक, सार्वभौम तथा समष्टिकल्पाण की भावना व्यक्त हुई है। वेदों की भाषा छंदोबद्ध है। इन छंदों से वेदार्थ

आच्छादित हैं। यह छादन एक ओर तो अनधिकारी से वेदमंत्रों की रक्षा के लिए तो दूसरी ओर अधिकारी द्वारा उस छादन को हटाकर वेदार्थ ग्रहण करने में सहायक बनने के लिए किया गया है। वेदों की भाषा वेदार्थ के सत्य का अवगुंठन है। इस अवगुंठन से अपरिचित व्यक्ति के लिए वेदार्थ असंगत एवं अक्रमबद्ध प्रतीत होते हैं। यही कारण है कि आरंभ में पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों को चरवाहों के गीत कहकर परिभाषित करना चाहा। पर शीघ्र ही पाश्चात्य विद्वानों को भी वेदों के की महता का बोध हुआ ।

वेदार्थ को समझने के लिए आरंभ हुई भाष्य परंपरा तथा वेदांत साहित्य धारा। इस प्रयास में अन्यान्य अनुशासनों का विकास हुआ। इन समारंभों से वेदार्थ के ऊपर पड़ा छादन हटा और वेद के आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक एवं उपासना पर विचारों का प्रकाश सुलभ हुआ। अत्यंत गंभीर वेदार्थ के अवबोध के लिए तथा उसके विषय की निर्भ्रान्त समझ प्राप्त करने के लिए जिन सहयोगी शास्त्रों का विकास हुआ उन्हें वेदांग कहा गया। उपनिषदों में विद्या के दो रूप बताए गए हैं। परा तथा अपरा विद्या। वेदों को अपरा विद्या कहा गया। मुंडक उपनिषद् में इस प्रकार कहा गया है :

"द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदंति परा चैव अपरा च।

तत्र अपरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तम् छन्दो ज्योतिषम् इति।

अथ परा यदा तदक्षरमधिगम्यते।"

-मुण्डक उपनिषद् 1.1/4-5

अर्थात्, ब्रह्मज्ञानी कहते हैं कि दो विद्याएं, परा तथा अपरा जानने योग्य हैं। अपरा के अंतर्गत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद अर्थवेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष है। परा वह है जिससे अक्षर (अविनाशी परमात्मा) के विषय में जाना जाता है।पुष्ट प्रमाणों के अभाव में विद्वानों ने पाया है कि वेदांगों को वेदाध्ययन के प्रयोजन से कब और किस दशा में अनिवार्यता प्रदान की। पर यह बात स्पष्ट है कि वेदांगों का अध्ययन वेदों की संहिता के पाठ में, उनके विनियोग में तथा विनियोग के समय विभिन्न प्रकार के वास्तुकर्म में अपरिहार्य बनाया गया है। श्री विष्णुपुराण में जिन चौदह विद्यास्थानों की बात की गई हैं उनमें छह वेदांग भी शामिल हैं।[7] इसके अलावे वेदांगों का उल्लेख तथा उसके अध्ययन की आवश्यकता सामवेद के षडविंश ब्राह्मण, गौतम धर्मसूत्र आपस्तंभ धर्मसूत्र में बताई गई है।

वेदांग का शाब्दिक अर्थ है वेदों के अंग। वस्तु का जो अवयव उसके स्वरूप का परिचय देता है उसे हम वस्तु का अंग तथा वस्तु को अंगी कहते हैं, अंग की परिभाषा इस प्रकार दी गई है-

अंग्यते ज्ञायन्ते अमीभिरिति अंगानि। पाणिनीय शिक्षा में वेदांगों का परिचय इस प्रकार दिया गया है :

"छंदः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।

ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोतमुच्यते॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।

तस्मात्सांगमचोत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।"

- पाणिनीय शिक्षा 41-42

सिद्धांत शिरोमणि भास्कराचार्य ने भी इसी प्रकार की उपमा दी है:

"शब्दशास्त्रं मुखे ज्यौतिषं चक्षुषी श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं च कल्प:करौ।

या तु शिक्षास्य वेदस्य सा नासिका पादपद्मद्वयं छन्दर्बुधैः आद्यै:बुधैः॥"

वेदांग साहित्य का विकास वैदिक काल के समापन से लेकर मौर्यकाल तक हुआ। ये सूत्रों में रचे गए हैं। इनके रचनाकाल में वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का उद्भव हुआ। वैदिक शिक्षा प्रणाली के अभिन्न अंग होने के साथ-साथ वेदांग का प्रभाव उत्तरकालीन भाषाओं के विकास तथा साहित्य की समृद्धि पर यथेष्ट रूप से पड़ा है।

वैदिक संहिता के सही पाठ के लिए अर्थात् वर्ण, स्वर आदि के शुद्ध उच्चारण के लिए विकसित वेदांग शिक्षा कहलाता है। प्रकृति-प्रत्यय के उपदेश से पदों का स्वरूप समझने और उनके अर्थ का अन्वय करने में सहायक वेदांग व्याकरण कहलाता है। अन्य वेदांगों का सहयोग लिए बिना जिससे पदों का पदव्याख्या के द्वारा अर्थनिर्णय किया जाता है उसे निरुक्त कहते हैं। वेदार्थ जिनसे आच्छादित हैं उन छंदों का ज्ञान करानेवाला वेदांत छंद कहलाता है। इस प्रकार चार वेदांत क्रमशः शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त तथा छंद वैदिक साहित्य की भाषिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायक हैं। इनसे वेदार्थ प्रकाशित करने में सहायता मिलती है। अन्य दो वेदांग कल्प तथा ज्योतिष प्रधानत: वैदिक कर्मकांडों के विनियोग से संबंध रखते हैं। यज्ञ के प्रयोगों को सम्भव करने वाला वेदांग कल्प है। यज्ञकाल के नियतन के लिए ज्योतिष वेदांग की आवश्यकता होती है । जैसा कि पाणिनीय शिक्षा से उद्धृत उक्त श्लोक के अंत में कहा गया है, इन अंगों के साथ वेदों का अध्ययन अध्येता को वेदज्ञान के क्षेत्र में उच्चपद पर स्थापित करता है। पाणिनीय शिक्षा में वेदांगों का क्रम इस प्रकार किया गया है- छन्द,कल्प, ज्योतिष, निरुक्त, शिक्षा और अंत में व्याकरण। प्रस्तुत लेख में इसी क्रम में वेदांगों की उपस्थापना की जा रही है। हालांकि अन्य स्थानों पर, यथा सिद्धांत शिरोमणि तथा मुण्डक उपनिषद में वेदांगो की गणना किसी अन्य क्रम से की गयी है।

पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भारतीय संस्कृति को मूलत: वाक् केंद्रित चिंतन कहा है। ऋग्वेद ने सृष्टि का आरंभ वाक् व्यापार से माना है। अत: आवश्यक था कि वाक् की शुद्धता तथा शुचिता पर पूरा ध्यान दिया जाए। जैमिनीय ब्राह्मण की एक कथा के अनुसार वाक् एकाकी थी। उसने यज्ञ किया। यज्ञ की आहुतियों से बारह महीनों का प्रादुर्भाव हुआ। वाक् ने पुन: यज्ञ किया आहुतियां तीस दिनों का माह बनीं। इस प्रकार

संवत्सर अस्तित्व में आया। उपनिषदों में वाक् को समिधा कहा गया है- वागेव समित। यदि वाक् केंद्रित चिंतनधारा वेदों से प्रोद्भूत होती है तो वेदांग उसके पुष्ट किनारों की तरह उसकी प्रसन्न धारा को वांछित दिशा देते हैं। यदि वेदों के अर्थ नियत तथा निर्भ्रांत न हुए, उनके पाठ का आरोह-अवरोह छंदों के अनुशासन में, व्याकरण के प्रबोधन में न रहा तो अर्थ के अनर्थ होने की संभावना बनी रहेगी। स्वर के गलत उच्चारण (स्वापराध) से मंत्रों का अर्थ अनर्थ में बदल जाता है। कहते हैं:

"एकः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तः न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोपराधात्॥"

- महाभाष्यम पश्पसाह्निक

इसके विपरीत शब्दार्थ साधना के क्रम में यदि थोड़ी सी उपलब्धि भी पा ली जाएं तो उसके महत् लाभ होते हैं। कहा गया है:

"एकः शब्दः सम्यक् ज्ञात : सुष्ठु प्रयुक्तः

स्वर्गे लोके च कामधुक् भवति।"

- महाभाष्यम् पश्पसाह्निक

यहां शब्द के सुष्ठु प्रयोग के विषय में कुन्तक का कथन उल्लेखनीय है। कुन्तक कहते हैं कि "अनेक अन्य वायकों के रहते हुए भी विवक्षित अर्थात् अभिलषित अर्थ tcका एकमात्र वाचक" शब्द का प्रयोग सुष्ठु प्रयोग है - शब्दा: विवक्षितार्थैकवाचकोऽ अन्येषु सत्स्वपि- वक्रोक्तिजीवित। फिर इसी प्रकार मंत्रों के विनियोग अर्थात् क्रियारूप में उनके प्रयोग का प्रश्न आता है। विनियोग के लिए विधियों तथा कालानुकूलता देखनी पड़ती है। इस सब पर विचार करने के लिए जो विधि-निषेध समय-समय पर तय किए गए वे क्रमशः शास्त्रों का रूप लेते गए और अपनी महत्ता के कारण वे वेदांगों के रूप में प्रतिष्ठित होते गए। इस क्रम में हम वेदांगों को समझने का प्रयत्न करेंगें।

1. छन्द : छन्द को वेद पुरुष के दो चरण कहा गया है। हालांकि वेदों को भी छंदस् कहा गया है पर वेदांग के रूप में इसे वैदिक काव्य की मात्रा आधारित रचना विज्ञान कहा गया है। छंद शास्त्र को प्राचीन ग्रंथों में छन्दोवियिति, छंदोनाम, छंदोभाषा, छंदो विजिति आदि आख्याएं दी गई है।

जिस प्रकारण चरणों के बिना व्यक्ति चल नहीं सकता उसी प्रकार वेद भी छंदों के बिना कंठाग्रता में अतिशय नहीं कर सकते। छंद शब्द की व्युत्पत्ति 'छंदि संवरणे' तथा 'चदि आह्लादने से दो प्रकार से बताई गई है। यास्क ने छवि संवरणे 'स्वीकार करके वेदों को मंत्रों के वेदों को छाजन के रूप में लिया है। छन्द वेदमंत्रों में निहित रस, भाव तथा वर्ण्य विषय को ढंक कर (छादित) करके रखते हैं।' छदि आह्लादने के अनुसार छंद

आह्लाद (मनोरंजन) के लिए मंत्रों का रक्षण करते हैं। परंपरा पिंगल को छंदशास्त्र का प्रणेता मानती है। उन्होंने अपने ग्रंथ छंद: सूत्रम् में अनेक छंद: प्रणेताओं का उल्लेख किया है।

छंद की सहायता से वेदानुरागी वेदमंत्रों की लय तथा मात्राविधान को समझ पाता है। प्रणाली से लेकर उसके/ आरोह-अवरोह तक जो सर्जना के रूप हैं छंद ही सक्रिय रहता है। वैश्विक आनंद की धारा का अनुभव कराने में छंद सहायक होते हैं। छंद वर्णों तथा पदों का समुच्चय होते हैं। सात प्रमुख छंद गायत्री (आठ मात्राएं तीन पाद), अनुष्टुभ (आठ मात्राएं चार पाद), त्रिण्टुभ (ग्यारह मात्राएं चार पाद), जगति (आठ मात्राओं के छह पाद) उष्णिक (अट्ठाइस मात्राओं के छह पाद) वृहति तथा पंक्ति हैं। ऋग्वेद में 13 छंद , यजुर्वेद में 8 छंद तथा अथर्ववेद में 5 छंद पाए गए हैं। छद: शास्त्र में वैदिक के साथ ही लौकिक संस्कृत के छंदों का भी उल्लेख है। लौकिक छंदों में मंदाक्रांता, मालिनी, शिखरिणी, इन्द्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, आर्या आदि अधिक प्रयोग किए जाते हैं। संगीत शास्त्र के विकास में भी छंदों की महत् भूमिका है। मात्राओं तथा पादों के नियमन ने वेद मंत्रों में किसी भी प्रकार के हेरफेर या परिवर्तन की संभावना समाप्त की है तथा इसे पाठ-सुलभ एवं गान-सुलभ बनाए रखा है।

2. कल्प: कल्प को वेदपुरुष के दो हाथ कहा गया है। कल्प शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है- कल्पने समर्थ्यते याग प्रयोग: इति कल्प :। ये मंत्रों तथा ब्राह्मणों (अर्थात् वेदों की प्रयुक्ति की विद्या है। यज्ञों का विधिपूर्वक विधान करने में कल्प निर्देशक स्थानीय हैं। कल्पशास्त्र सूत्रों में निबद्ध हैं। ये सूत्र क्रमश : श्रौतसूत्र, स्मार्तसूत्र, गृहसूत्र और धर्मसूत्र में विभक्त है। इन सूत्रग्रंथों का विनियोग उचित, उपयुक्त तथा वांछित वैदिक अनुष्ठान सम्पन्न कराने में होता है। कल्प सूत्रों की आधिकारिकता पर ही वेदों के अन्य पांच अंगों यथा व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष तथा निरुक्त की प्रासंगिकता टिकी हुई है। कल्पसूत्रों में ही ब्रह्मचारियों, गृहस्थों तथा संन्यासियों के आचार-विचार का नियमन हैं। इन्हीं से पता चलता है कि किस प्रकार याजिककर्मकांड संपत्र किए जाने हैं तथा किस मंत्र का कैसे विनियोग करना है, किस देवता का वैसे उपचार करना है तथा किस यज्ञ सामग्री का कहां प्रयोग किया जाना है। यज्ञ में उपयोग किए जाने वाले पात्रों की उपयुक्तता, वेदी का कि निर्माण, यज्ञशाला की बनावट आदि कार्यों के लिए कल्पसूत्र ही प्रमाण हैं। शोषड संस्कार, पुरुषार्थ, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का नियमन भी कल्पसूत्रों से ही होता है।

वैदिक कल्पसूत्रों के प्रौतसूत्र आकार में बहुत विस्तृत हैं। इनका आधार श्रुतियां हैं। इनमें बताया गया है कि वैदिक यज्ञ-याग का व्यावहारिक रूप कैसा हो। ये अन्य सूत्रों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। गृह्यसूत्र गृहस्थी के संस्कारों, रीतिरिवाजों का नियमन करते हैं। धर्मसूत्रों का क्लेवर भी बहुत व्यापक है। आपस्तंभ, गौतम, बौधायन के धर्मसूत्र आज भी हमारे जीवन तथा सामाजिक अवसरों पर संदर्भित होते हैं। ये विधि, नैतिकता, सामजिक व्यवस्था के स्रोत हैं। एक प्रकार से कहें तो मानवों के ऐहलौकिक जीवन के सभी पक्षों पर धर्मसूत्रों के मार्गदर्शन का काम करता है।

रामदास गौड़ ने अपनी पुस्तक हिंदुत्व में कल्पसूत्रों को वेदों के पूरक साहित्य के खंड में रखा है। आश्वलायन, सांख्यायन तथा शौनक श्रौतसूत्र ऋग्वेद के हैं। इनमें शौनक श्रौतसूत्र अनुपलब्ध है। सनातन धर्म के 16

E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

संस्कार तथा 10 कर्म आश्वलायन श्रौतसूत्र से नियमित होते हैं। बौधायन, भारद्वाज, हिरण्यकेशी आदि यजुर्वेद के श्रौतसूत्र हैं। बौधायन श्रौतसूत्र से दर्श पूर्णमास यज्ञ, चातुर्मास, वाजपेय यज्ञ आदि की विधियां बताई गई हैं। बौधायने आदि श्रौतसूत्रकारों के गृह्यसूत्रों का अस्तित्व यजुर्वेद में पाया जाता है। सामवेद के सूत्र ग्रंथ अन्य सभी वेदों के सूत्र ग्रंथों से अधिक हैं। इनमें माशक, लाट्यायन, द्राह्यायन प्रमुख श्रौत सूत्र हैं। गृहसूत्रों में गोभिलसूत्र प्रमुख है। इसके अतिरिक्त इस वेद के खादिर तथा पितृमेध-सूत्र उल्लेखनीय है। अथर्ववेद का प्रमुख प्रौतसूत्र है कौशिकसूत्र। इसे संहिता विधिसूत्र भी कहते हैं। ये सूत्र मेधा जनन, ब्रह्मचारी संपद, ग्राम-दुर्ग- राष्ट्रादि विषय, पुत्र-पशु धन-धान्य प्रजा-स्त्री-करि- तुए-रथ-दोलक आदि की व्यवस्था का नियमन करते हैं।

3. ज्योतिष : ज्योतिष को वेदपुरुष नेत्रद्वय हैं। ज्योतिष को प्रयोजन बताते हुए कहा गया है यज्ञकालार्थ सिद्धये। अर्थात यज्ञ काल की सिद्धि (निर्धारण) के लिए ज्योतिष शास्त्र है। यज्ञकर्म की प्रवृत्ति वेदों की प्रेरणा से होती है। सभी विहित यज्ञ काल में ही सम्पन्न होते हैं। हमें उपलब्ध ज्योतिष शस्त्र क्रमश : वैदिक ज्योतिष एवं वेदांग ज्योतिष के रूप में विभक्त है। वेदों में वर्णित ज्योतिष वैदिक ज्योतिष है तथा संबंधित विषय को सुसंबद्ध रूप से प्रस्तुत करनेवाला शास्त्र वेदांग ज्योतिष है। वेदांग ज्योतिष का वीज वेदों में ही रहता है पर ऋषियों ने अपनी मेधा से उसे याज्ञिक क्रियाकलाप की सिद्धि के लिए कालनिर्णय के प्रयोजन से उपवृंदित किया है।

वेदांग ज्योतिष पर तीन ग्रंथ मिलते हैं? त्रहक् ज्योतिष, यजु: ज्योतिष एवं अपर्व ज्योतिष। ऋक ज्योतिष के प्रणेता महर्षि लगध हैं। उन्होंने स्वीकार किया है कि वेदांग ज्योतिष के सिद्धांत तपस्या या समाधि से नहीं वरन 3 बौद्धिक चेष्टाओं से स्थापित किया है। लगध ने एक श्लोक में स्वयं को सगर्व महात्मा लगध कहा है और बताया है कि काल को सिर झुकाके, सरस्वती को प्रणाम करके मैं कालज्ञान दे रहा हूँ। इस ज्ञान में मास, वर्ष, मुहूर्त, उदय, पर्वकाल, दिन, ऋतु अयन आदि का वर्णन किया गया है।

विभिन्न वैदिक कर्मकांड सम्पन्न करने तथा संस्कारादि क्रियाएं करने के लिए खगोलीय दशाओं का विचार करते हुए शुभ लग्न का विचार करनेवाला शास्त्र ज्योतिष है। इसके लिए ज्योतिष्कों सूर्य, चंद्र, ग्रह आदि की स्थिति एवं गति की गणितीय दशा का अध्ययन किया जाता है। ब्राह्मणों तथा आरण्यको में खगोलीय घटनाओं का उल्लेख मिलता है तथा चंद्रमा की गति के उन्नत अध्ययन के संदर्भ भी मिलते हैं। वेदांग ज्योतिष ने वैदिक पंचांग का विकास किया। पंचागों के आधार पर ही यज्ञ-याग तथा दैनिक सन्ध्या-उपासना का समय जाना जा सका। ऋृतुओं के परिवर्तन सौर तथा चंद्रग्रहण जैसी खगोलीय घटनाओं तथा कुंभ आदि आयोजनों के, विषय में हमारी जानकारी ज्योतिष पर ही आधारित होती है।

वेदांग ज्योतिष् के तीन संबंध (विभाग) हैं। पहला, सिद्धांत स्कंधम्। इसमें त्रिकोणमिति, अंकगणित तथा रेखागणित आते हैं। दूसरा, होरा (स्कंधम्)। इसमें ताराओं एवं ग्रहों की गति का अध्ययन किया जाता है तथा मानव पर उसके प्रभाव का निरीक्षण किया जाता है? संहिता स्कंधम्। इसमें भूगर्भ स्थित जल, धातुओं आदि का पता लगाना, गृहनिर्माण, शुभंकर आदि का पता लगाना शामिल है।

'आर्य ज्योतिषम्' वेदांग ज्योतिष् की उल्लेखनीय कृति है। इसे विश्व की आद्य गणितीय पुस्तकों में स्थान प्राप्त है। इसे महात्मा लागध की कृति बताया जाता है। 36 मंत्रों वाले इस ग्रंथ से वेदांग ज्योतिष का आरंभ होता है। इस ग्रंथ में प्रतिपादित है कि वेद यज्ञार्थ हैं, यज्ञ काल पर आश्रित हैं काल अखंड है। इस अखंड काल में यज्ञार्थ अनुकूल मुहूर्त का पता लगाना वेदांग ज्योतिष् का कार्य है। आर्च ज्योतिष के उपसंहार में कहा गया है:

"वेदा हि यज्ञार्थममिप्रवृताः।

कालानुपूर्वा विहिताश्य यज्ञा: ॥

तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं।

यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञान् ॥"

4. निरुक्त : निस्कत को वेदपुरुष के कान कहा गया है। कानों की सहायता से जैसे भाषा का अर्थ मालूम होता है वैसे ही निरुक्त से वेदों के शब्दों का विशिष्ट अर्थ जाना जाता है। इसे वैदिक शब्द कोश भी कहते हैं। वेदों में वैदिक शब्दकोश को निघंटु कहा गया है। निरुक्त में निर्वचन की व्यवस्था है। यहां प्रत्येक शब्द को वर्णों में विभक्त करके धातु का पता लगाकर उस धातु के आधार पर अर्थ निश्चय किया गया है। निरुक्त उच्चरित, व्यक्त, व्याख्यायित, अभिव्यक्त, परिभाषित तथा स्फुट उक्तियों की व्यवस्था है। इसमें उत्पत्ति केंद्र अर्थात् धातु से लेकर अभिव्यक्त अर्थ तक सजगता रहती है। निरुक्त की पद्धति में पद व्याख्या ही आधार है। निरुक्त नामक ग्रंथ में यास्क ने 'समाम्नाय: समाम्नातः से लेकर तस्यास्तस्यास्ताद्भाव्यमनुभवति अनुभवति तक 12 अध्यायों में निघंटु में आए शब्दों की व्याख्या की है। यहां संग्रहीत सभी शब्दों के अवयवलब्ध अर्थ स्पष्ट किए गए हैं।

निरुक्त का उपयोग वैदिक शब्दों के शब्दार्थ ग्रहण में होता है। शब्दों के अर्थ का निश्चय व्याख्या में सबसे प्रधान सहायक होता है। अर्थ मालूम नहीं होने से पाठ का कोई अर्थ नहीं रह जाता। वेदों की व्याख्या के क्रम में शब्दों के निरुक्त सम्मत अर्थ ही ग्राह्य होते हैं। ॠक् अनुक्रमणिका में बताया गया है कि वेदों की व्याख्या में निरुक्त प्रधान उपकरण हैं। सम्प्रति यास्य प्रणीत निरुक्त हमें उपलब्ध है। यास्क ने अपने ग्रोथ (निरुक्त) में शाकपूणि, उर्णनाम और स्थौलष्ठिवी इन तीन प्राचीन निरुक्तकारों का निपातों पर विचार किया है। यास्क रचित निरुक्त पर अनेक टीकाएं उपलब्ध हैं।

सायनाचार्य ने ॠग्भाव्यभूमिका में कहा है -

"अथ निरुकक्तप्रयोजनमुच्यते। अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तम्।"

अर्थात् अब निरुक्त का प्रयोजन बताते हैं। निरुक्त वह है जो अवबोध के उद्देश्य से शब्दों की उत्पत्ति की व्याख्या करता है। निरुक्त वेदों के शब्द संग्रह, जिसे निघन्टु कहते हैं, पर टीका है। निघंटु में संगृहित शब्द

देखने में सामान्य लगने के बावजूद वेदों में बिल्कुल अलग अर्थ में व्यवहृत होते हैं। निरुक्त के अध्ययन के बिना वैदिक शब्दों का गलत अर्थ निकल सकता है। निरुक्त की निर्वचन प्रक्रिया के चार चरण होते हैं। ये हैं: विभिन्न शब्दों में वर्णों अथवा वर्ण समूहों की आवृत्त, विभिन्न शब्दों का सदृश अर्थ में प्रयोग, आवृत्त ध्वनियों के साथ आवृत्त अर्थों को पहचानना तथा किसी शब्द विशेष के समास को एक निश्चित अर्थ देना।

निरुक्त वेदों के सार को समझने में पदों का अर्थ करके हमारी सहायता करता है। वैदिक साहित्य का अर्थ लगाने में निरुक्त की पद्धति निर्वचन की है। निरुक्त में ब्राह्मण ग्रंथों के अनेकानेक संदर्भ मिलते हैं तथा अनेक वैदिक व्याख्याओं के अप्रत्यक्ष संदर्भ भी इसमें दिए गए हैं। यास्क ने शाकटायन का उल्लेख करते हुए बताया है कि नाम (संज्ञाएं) आख्यातों (धातुओं) से व्युत्पन्न हैं। गार्ग्य ने सस पर आपत्ति की है।

5 शिक्षा : शिक्षा वेदांग को वेदपुरुष का मुख कहा गया है। इसमें वर्ण, स्वर आदि की उच्चारण विविध का उपदेश किया गया है। तैत्तिरीय उपनिषद में शिक्षा के प्रयोजन की चर्चा हुई है। कहा गया है:

"शीक्षां व्याख्यास्याम:। वर्ण: स्वर:। मात्रा बलम् 'साम संतान:। इत्युक्त: शीक्षाध्याय:"

अर्थात् अब हम शिक्षा का वर्णन करेंगे। शिक्षा में वर्ण तान से संबंधित है, मात्रा में बल के प्रयोग की बात है। साम मध्यम उच्चार तथा संतान संधि कार्य से संबंधित है। ऋग्वेद भाव्य के प्राक्कथन में कहा है- वर्ण-स्वरादुच्चारणप्रकारो यत्र उपदिश्यते सा शिक्षा। अर्थात् जहां वर्ण स्वर आदि के उच्चारण प्रकार का उपदेश किया जाता है वह शिक्षा है। इस प्रकार का ज्ञान देने में वेदों का प्रातिशाख्य भी अग्रही स्रोत के रूप में जाने जाते हैं।

शिक्षा वेदांग का उद्देश्य संहिताओं के पाठ में अक्षरों, वर्णों, मात्राओं, बल आदि का सही प्रयोग सिखाना है। पाणिनीय शिक्षा शिक्षा वेदोग की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। पतंजलि ने महाभाष्यम् में शब्दों के सही प्रयोग के लाभ के संदर्भ में दुण्ट (गलत) शब्दों के प्रयोग की वर्जना की है। वैदिक संहिता का अर्थ प्रकाश पाठों के सही उच्चारण की अपेक्षा रखता है। इसके अभाव में अर्थ के अनर्थ में बदल जाने की संभावना रहती है। प्रातिशाख्यों से पता चलता है कि वैदिक मंत्रों का सही उच्चारण एक कठिन कार्य था। पतंजलि ने एक मानक प्रपाठक के लिए सम्यक पदावली का सम्यक स्वर में उच्चारण करने में समर्थ होना चाहिए। इसीलिए ऋक् प्रातिशाख्य की टीका में बाद के आधिकारिक आचार्य विष्णुमित्र ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए कहा कि वह स्वर-वर्णोपदेशक शास्त्र है।

6 व्याकरण : व्याकरण को वेदपुरुष का मुख कहा गया है। ये प्रकृति-प्रत्यय के उपदेश से पदस्वरूप का तथा उसके अर्थ का निश्चय करने में सहायक होते हैं। ब्राह्मणग्रंथों में शब्दों के उच्चारण, वचन और काल के संबंध में जो व्यवस्थाएं हो गई है उनको देखते हुए शब्दार्थ के निरूपण की आवश्यकता की पूर्ति के प्रयोजन से व्याकरण शास्त्र का विकास हुआ। वेदमंत्रों सुरक्षित रखते हुए उसके अर्थ का विवेचन वेदांग के रूप में व्याकरण का कार्य है। वेद और लोक में प्रचलित शब्दों की व्याख्या व्याकरण करता है। कहा गया है- व्याक्रियंते व्युत्पायन्ते शब्दाः अनेनेति व्याकरणम्' ऋग्वेद 4.58.6 में व्याकरण के लक्षण बताते हुए कहा

गया है कि व्याकरण एक वृषभ की तरह है जिसके चार सींग (नाम, आरख्यात, उपसर्ग तथा निपात) हैं। इसके तीन पाद (भूत, वर्तमान तथा भविष्यत) हैं। इसके दो सिर (सुप् तथा तिङ्) हैं। इसके सात हाथ (सात विभक्तियां)। यह उरस्, कण्ठ तथा मूर्धा तीन खूंढियों से आबद्ध है। यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट हो गया है।[9]

वेदांगों में व्याकरण को, महत्व एवं आवश्यकता की दृष्टि से, ऊँचा स्थान दिया गया है। व्याकरण की परंपरा बहुत लंबी है। महाभाष्यम् में पतंजलि कहते हैं कि वृहस्पति ने इंद्र को एक सहस्र वर्ष तक व्याकरण पढ़ाया। वेदों के अनादित्व की धारणा पर विचार करें तो व्याकरण का अनादित्व स्वत : स्पष्ट हो जाता है। व्याकरण के प्रयोजनों में वेद की रक्षा, उसका अर्थावगाहन शब्द ज्ञान, संदेह निवारण, अशुद्ध शब्द से परिहार आदि बताए गए हैं।

व्याकरण की बात आते ही पाणिनीय व्याकरण की परंपरा का स्मरण हो आता है। आठ अध्यायों में विभक्त पाणिनि का ग्रंथ अष्टाध्यायी ही आज हमारे समझ व्याकारण शास्त्र का आधार ग्रंथ है। अष्टाध्यायी में लगभग 4000 सूत्र हैं। इस ग्रंथ में का विभाजन सूत्रपाठ, गण पाठ, धातुपाठ, उणादिपाठ, लिंगानुशासन में किया गया है। पाणिनीय व्याकरण का प्रस्थान नामों की आख्यात से व्युत्पत्ति मान कर होता है। पाणिनि की परंपरा को कात्यायन ने आगे बढ़ाया और कात्यायन से आगे पतंजलि हुए। व्याकरण की परंपरा में हम इन्हें त्रिभुति कहते हैं। इन व्याकरण के सिद्धांत और प्रयोग के संबंध में आगे-आगे के मुनि को प्रमाण माना गया है- यथोत्तर मुनीनां प्रामाण्यम्। कात्यान की वार्तिक हाथा पतंजलि का महाभाष्यम व्याकरण के समाहत ग्रंथ हैं। पतंजलि के बाद भर्तृहरि का नाम आता है। पतंजलि महरि ने वाक्यपदी वाक्पदीयम नामक अपने ग्रंथ में व्याकरण वर्शन का प्रवर्तन किया है।

भारतीय मनीषा स्वीकार करती है कि सारा ज्ञान (और विज्ञान भी) बीजरूप में ओंकार में समाया हुआ है। इस बीजरूप ज्ञान का विस्तार वेदों में छंदानुशासन के साथ हुआ। वेदों के शब्दों अर्थ गुरुम हैं, उनके प्रयोग भी अलग तरह से हुए हैं। वैदिक साहित्य का मंत्र- ब्राह्मणात्मक भाग छंदों में आबद्ध है तथा ये विभिन्न ऐहिक अथवा लौकिक उपलब्धियों के लिए यक्षों के विनियोग में प्रयुक्त होते हैं। मंत्रों का उच्चारण एक अनुशासन में होता है तो यज्ञ के उपचार और कर्मकांड एक अन्य अनुशासन का पालन करता है। वेदों के अर्थ के निर्णय के लिए एक शास्त्र आवश्यक है तो याजादि कर्मों के करणीय काल का नियमन करने के लिए एक दूसरा अनुशासन विद्यमान हैं। वेदों का तात्पर्य समझना उनकी भाषा की प्रकृति को समझ बिना संभव न थी। इस समझ के लिए व्याकरण तथा निरुक्त नामक साहित्य विकसित हुआ। वेदों के मंत्रों का गान सार्थक हो इसके लिए छंदशास्त्र का विकास हुआ। वैदिक ध्वनियां अपने निर्दिष्ट स्वरूप में उच्चरित हो इसके लिए शिक्षा शास्त्र का विकास हुआ। इस प्रकार वेदों के पाठ तथा उनके तात्पर्य के लिए बिग चार शास्त्रों का विकास हुआ हुआ। ये वेदांग कहलाए।

वैदिक साहित्य का एक बड़ा भाग कर्मकांडात्मक है। कर्मकांड में यज्ञों का विधान है गृहस्य के जीवन में संस्कार तथा क्रियाएं अनिवार्य हैं। इनका शास्त्रीय नियमन करने के लिए दो साहित्य विकास विकसित हुए-

कल्प तथा ज्योतिष / कल्प वेदांग सूत्रों में विद्यमान हैं जो समाज व्यवस्था, यह व्यवस्था, राजव्यवस्था आदि का नियमन करता है। दूसरी ओर ज्योतिष वेद यज्ञादि कमी के लिए ज्योतिषकों की गति तिथि-वार, मास आदि का विचार करके मुहूर्त का पता करना है। इस प्रकार वेदों के तात्पर्य ग्रहण के लिए चार तथा कर्मकांड रुपायन के लिए दो वेदांग विकसित हुए तथा इन छह वेदांगों के साथ वेदों का अध्ययन करने कराने का कर्तव्य निर्धारित किया गया।

संसार की प्राचीनतम पुस्तक के रूप में मान्यता प्राप्त ॠग्वेद भारतीय संस्कृति का आधार ग्रंथ है। वेद इस नाम से जाना जाने वाला यह ग्रंथ अन्य तीन वेदों यजर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद का स्रोत भी है। इन चार वेदों के आधार पर विकसित हुई भारतीय ज्ञान परंपरा अनेक शाखाओं प्रशाखाओं में प्रसृत होकर भारत को विश्व में ज्ञानकेंद्र के रूप में विज्ञप्त किया। वेदों के यथार्थ को ग्रहण करने में जो शास्त्र हमारी मदद करते थे आज वे शास्त्र हमारे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। उदाहरण के लिए प्राय: सभी भारतीय भाषाओं पर शिक्षा/तथा व्याकरण वेदांगों की अधिकारिता विद्यमान है। प्राचीन काल से मध्यकाल होते हुए आधुनिक काल तक काव्य रचना में जिस अनुशासन पद्य रचनाएं प्रौढ़ता को प्राप्त हुई वह अनुशासन छंद प्रकार विभिन्न यज्ञानुष्ठान के लिए मुहूर्त निकालने, पर्व त्योहारों का कालनिर्णय करने, ग्रहण आदि का पूर्वानुमान करने के लिए ज्योतिष शास्त्र आज भी हमारे लिए उपयोगी है। सबसे बढ़ कर समाज में सुव्यवस्था के लिए सत्य, न्याय, सदाचार, पर दुःखकातरता के संस्कारों में अपनी नई पीढ़ियों को दीक्षित करने के लिए तथा शासन सूत्र संचालन के लिए भी जिस धर्मशास्त्रीया व्यवस्था की स्थापना आवश्यक है उसके लिए कल्पवेदांग आज पहले से अधिक प्रासंगिक हो गया है।

वेदांगों ने ज्ञान की सनातन धारा वेदों का परिरक्षण किया है। इन वेदों के तात्पर्य को समझने में इन विश्लेषणात्मक तथा उच्चगुणात्मक वेदांगों का विकास करके हमारे ॠषियों ने मानवता पर भारी उपकार किया है। भारतीय शिक्षा पद्धति में इनको शामिल करके प्राचीन ज्ञान को नूतन परिवेश में समझने का अवसर उपलब्ध कराना हमारा दायित्य है। जिस प्रकार मनुष्य के अंग उनके शरीर को क्रियाशील बनाते हैं, वेदांग भी उसी प्रकार वेद शरीर को भारत के उज्ज्वल भविष्य में यहां की ज्ञानपरंपरा को प्रवहमान बनाए रखने में सहायक है। यह समय की मांग है कि वेदांगों का अनुशीलन तथा संवर्धन किया जाए ताकि वैदिक ज्ञान की विभूति हमें प्राप्त हो सके।

संदर्भ सूची

1. श्री आविंद, वेद रहस्य (उत्तरार्ध) श्री अरविंद सोसाइटी प्रकाशन
2. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखंबा विद्याभवन प्रकाशन
3. व्याकरण महाभाष्यम्, पस्पशाह्निक
4. निरुक्त 1/1
5. शास्त्री मंगलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास : वैदिक धारा भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
6. अमरभारती, नवभारत प्रकाशन, पटना

E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

7. श्री विष्णुपुराण 3.6/28-29 गीता प्रेस प्रकाशन
8. तैत्तिरीयोपनिषद् 1/2
9. चत्वारि श्रृंगास्त्रयो अस्यपादा:
10. संदर्भ ग्रंथ :
11. गौड़, रामदास, हिंदुत्व, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी
12. भट्टाचार्य, सत्यव्रत सामग्रीम वेदत्रयी परिचय, हिंदी समिति उ.प्र. शासन प्रकाशन
13. महाभाष्यम्, ए मुखर्जी एं कंपनी, कोलकाता
14. संस्कृत साहित्य का इतिहास ए. 1.बी कोथ हिंदी अनुवाद, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन
15. संस्कृत साहित्य का इतिहास ए. 1.बी कोथ हिंदी अनुवाद, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन